समग्रता का मूल–''कार्य की कुशलता''

चन्द्र किशोर
असिस्टेंट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
ब्रह्मावर्त पी0 जी0 कॉलेज,
मन्धना, कानपुर नगर (उ0 प्र0)

सारांश

संसार में मनुष्य कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। कभी सार्थक तो कभी निरर्थक। निरर्थक कर्म करने से शक्तियों का 'क्षय' भी होता है। अस्तु शक्तियों का निरर्थक 'क्षय' किये बिना ऐसा कर्म करना जिससे समग्रता अर्थात् परमार्थ की प्राप्ति हो सके। गीता का स्पष्ट कथन है कि – ''कुशलता अर्थात् वैज्ञानिक प्रणाली से कर्म करना ही 'कर्मयोग' है।'' कर्मानुष्ठान की विधि ठीक–ठीक जानने से मनुष्य को श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। समस्त कर्मों का उद्देश्य है – मन के भीतर पहले से ही स्थित 'शक्ति' को प्रकट करना, आत्मा को जागृत करना। प्रत्येक मनुष्य के भीतर पूर्णशक्ति और पूर्णज्ञान विद्यमान है। कर्म इन महान शक्तियों को जागृत करने तथा बाहर प्रकट करने में साधन मात्र है।

कर्म की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने तक स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहें हैं, उन सबको करने वाला ईश्वर ही है। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बन्धन से मुक्त रहता है। उसके द्वारा किये गये कर्म से किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार के कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते हैं। कर्म की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्म के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवन–यापन करता हुआ भी साधना कर सकता है तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

मुख्य शब्द

समग्रता, परमार्थ, कार्य की कुशलता

प्रस्तावना

जनसंख्या की वृद्धि, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण और सामाजिक–राजनैतिक परिवर्तनों ने आधुनिक मानव के लिए कर्म को एक अपरिहार्य आवश्यकता बना दिया है। विज्ञान तथा मुक्त जीवन ने मनुष्य की स्वयं के तथा जगत के विषय में धारणायें बदल दी है और उनके लिए– अनुभव तथा अभिव्यक्ति के लिए– नई–नई दिशायें खोल दिए हैं। आधुनिक नर–नारी सर्वत्र ही आर्थिक शोषण और सामाजिक एवं आर्थिक अत्याचार से मुक्त होने का प्रयास कर रहें हैं। इसके साथ ही आधुनिक जीवन के मनुष्य के उसके पूर्वजों की संस्कृति तथा धार्मिक विश्वासों से विच्छिन्न कर दिया है और उसमें असन्तोष, वर्गभेद तथा हिंसा के बीज बो दिये हैं। दूसरी ओर, अध्यात्मिक जीवन में भी कर्म का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। अपनी आजीविका अर्जित करने की आवश्यकता और अधिकाधिक सामाजिक चेतना तथा उत्तरदायित्व के कारण मनुष्य पूरी तौर से एकान्तवास तथा ध्यान का जीवन अंगीकार नहीं कर सकता। अतः वैज्ञानिक पद्धति से कार्य करना ही कार्य कुशलता है, जिससे समग्रता अर्थात् परमार्थ की प्राप्ति हो सके।

अध्ययन का उद्देश्य

सर्वसाधारण की उन्नति तथा विकास

साहित्यावलोकन

1. श्रीमद्भगवद्गीता, तत्वविवेचनी हिन्दी टीका सहित, टीकाकार–जय दयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2075
2. माधवाचार्य कृत–सर्वदर्शनसंग्रह, भाष्यकार–प्रो0 उमाशंकर शर्मा ''ऋषि'', प्रकाशक–चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण–2016
3. महर्षि पतंजलि कृत – पातंजल योगसूत्र – योगदर्शन, अनुवादक एवं व्याख्याकार–नन्दलाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार–2018
4. सदानन्द योगीन्द्र कृत – वेदान्तसार, अनुवादक एवं व्याख्याकार – स्वामी विदेहात्मानन्द, प्रकाशक – स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्णमठ, नागपुर, द्वितीय संस्करण–23.05.2009 एवं द्वितीय पुनर्मुद्रण – 19.10.2017
5. स्वामी विवेकानन्द कृत – कर्मयोग, प्रकाशक – स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्णमठ, नागपुर, पुनर्मुद्रण – 27.07.2018
6. कर्मयोग की साधना – मूल लेखक – स्वामी भजनानन्द, अनुवादक – स्वामी विदेहात्मानन्द, प्रकाशक – स्वामी तत्वविदानन्द, कोलकाता, प्रथम संस्करण–2011

कर्म का स्वरूप

''कर्मसु कौशलम्'' – कार्य की कुशलता अर्थात् वैज्ञानिक पद्धति से कर्म करना। अर्थात् ऐसा कर्म जिससे समग्रता अर्थात् सम्पूर्णता की प्राप्ति हो सके।

कर्म मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं– **'विहित कर्म' तथा 'निशिद्ध कर्म'।**

'विहित कर्म' का अर्थ है – सुकृत कर्म अर्थात् अच्छे कर्म। विहित कर्म चार प्रकार के होते हैं– **नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्यकर्म एवं प्रायश्चित कर्म।**

1. **'नित्यकर्म'** का अर्थ है– प्रतिदिन किया जाने वाला कर्म, जैसे– संध्या बंदन, पूजा, अर्चना आदि।
2. **'नैमित्तिककर्म'** का अर्थ है– किसी प्रयोजन से किये जाते हैं। जैसे– त्यौहार आने पर अनुष्ठान, किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि। पुत्र जन्मादि पर जात कर्म, यज्ञोपवीत आदि।
3. **'काम्यकर्म'** वह है जो किसी कामना से किये जाते है।, नौकरी प्राप्ति के लिए, स्वर्ग प्राप्ति के लिए यज्ञ, वर्षा करने या वर्षा रोकने के लिए हवन–अनुष्ठान, पुण्य–फल प्राप्ति की इच्छा से दान इत्यादि।
4. **'प्रायश्चितकर्म'** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति से कोई अनैतिक कर्म या पाप हो जाए तो उसका प्रायश्चित तथा जन्म–जन्मान्तरों के पापों का 'क्षय' करने के लिए – 'तपश्चर्या' इत्यादि।

'निशिद्धकर्म' जो कर्म 'शास्त्रानुकूल नही हैं, जैसे– चोरी, हिंसा, झूठ, व्यभिचार इत्यादि 'निशिद्ध' कर्म हैं। हम जो भी कर्म करते हैं, उन्हें करने या न करने के लिए हमारा मन अर्थात् 'आत्मतत्व' प्रेरित करता है। यदि आत्मा की आवाज नहीं सुनी अथवा परमेश्वर का 'भय' किये बिना जो कर्म करते हैं, वह **'निशिद्ध'** कर्म है।

चार्वाक दर्शन में कर्म

चार्वाक दर्शन में शारीरिक सुखानुभूति के लिए कर्म करने के लिए कहा गया है। उनके मत में जब तक जीवन है तब तक सुख से जियो, उधार लेकर घी पियो अर्थात् येन–केन प्रकारेण जिस किसी प्रकार से इस शरीर को सुख की अनुभूति हो वह सब करो–

यावज्जीवेत सुखं जीवेद ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।

चार्वाकों के अनुसार चार महाभूतो– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, के अतिरिक्त ''आत्मा'' नाम का कोई अन्य पदार्थ नहीं है। चैतन्य आत्मा का गुण है चूंकि आत्मा नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, अतः चैतन्य शरीर का ही गुण या धर्म सिद्ध होता है अर्थात् यह शरीर ही आत्मा है इसलिए जिस किसी भी प्रकार से इस शरीर को सुख की प्राप्ति हो, वैसा ही कर्म करना चाहिए और वही सच्चा **''कर्म''** है।

जैन दर्शन में कर्म

जैन दर्शन में कर्म के मुख्य रूप से आठ भेद बताये गये हैं– ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जैनियों के अनुसार कर्म पौद्गलिक अर्थात् शारीरिक यानि धूल के कण के समान जड़ पदार्थ है। ये इच्छा, द्वेष और भ्रम से प्रेरित मन, शरीर और वाक् की क्रियाओं तथा वासनाओं से पैदा होते हैं। कर्म के मुख्य रूप से दो भेद हैं–

1. घातीय अथवा नाशवान्।
2. अघातीय अर्थात् जो कि नाशवान नहीं है।

इनमें से घातीय कर्म के चार भेद है –

अ. ज्ञानावरणीय
ब. दर्शनावरणीय
स. अन्तराय अर्थात् प्रगति में बाधक
द. मोहनीय

इसी प्रकार अघातीय कर्म के भी चार भेद हैं –

अ. आयुष कर्म
ब. नामकर्म
स. गोत्रकर्म
द. वेदनीय कर्म

ये आठ तरह के कर्म है, जो बन्धन के कारण हैं।

बौद्ध दर्शन में कर्म

बौद्ध दर्शन में ''आष्टांगिक मार्ग'' को मोक्ष तक पहुंचने का सर्वोत्तम मार्ग बतलाया गया है। आष्टांगिक मार्ग क्या है ? कहते हैं–

1. सम्यक् दृष्टि अर्थात् यथार्थ को समझने की दृष्टि।
2. सम्यक् संकल्प अर्थात् दृढ़ निश्चय करना।
3. सम्यक् वाक् अर्थात् वाणी की पवित्रता और सत्यता।
4. सम्यक् कर्मान्त अर्थात् आचरण की शुद्धि, क्रोध, द्वेष और दुराचार आदि का त्याग करना।
5. सम्यक् आजीव अर्थात् न्यायपूर्ण जीविकोपार्जन करना।

6. सम्यक् व्यायाम अर्थात् जीवन में शुभ के लिए निरन्तर प्रयत्न करना।
7. सम्यक् स्मृति अर्थात् चित्त में एकाग्रता का भाव।
8. सम्यक् समाधि अर्थत् चित्त की एकाग्रता से निर्विकल्पक प्रज्ञा की अनुभूति।

योगदर्शन में कर्म

महर्षि पतंजलि ने 'कर्म के भेद बताते हुए कहा है–

''कर्माऽशुक्लाऽकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्'' ———(1)

अर्थात् शुक्ल कर्म, कृष्ण कर्म, शुक्लकृष्णकर्म तथा अशुक्लकृष्णकर्म, ये चार कर्म के भेद हैं।

1. **शुक्ल कर्म –** वेद विहित विधाओं के आधार पर जो कर्म किये जाते हैं, जिनसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उन्हें ही **'शुक्लकर्म'** कहते हैं।
2. **कृष्ण कर्म –**शास्त्र विरूद्ध कर्मों को पाप कर्म कहते हैं और वे ही **'कृष्णकर्म'** हैं। इन कृष्णकर्मों से दुःख तथा नरक की प्राप्ति होती है एवं इन कर्मों के फलों को जन्म–जन्मान्तर तक भोगना पड़ता है।
3. **शुक्लकृष्ण कर्म –** ऐसे कर्म जिनमें पाप–पुण्य का मिश्रण हो, जिनसे मनुष्य को पुनः जन्म की प्राप्ति होती है, वे है– **'शुक्लकृष्णकर्म'**।
4. **अशुक्लऽकृष्ण कर्म –** जो न पाप कर्म हो न पुण्य कर्म हो और न पाप–पुण्य मिश्रित कर्म हो, बल्कि इन सबसे भिन्न कर्म हो, वह हैं– **'निष्कामकर्म'**। क्योंकि ये कर्म किसी भी कामना से नहीं किये जाते। इन कर्मों के करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्ध, पवित्र, दर्पण की भाँति स्वच्छ छवि वाला निर्मल बन जाता है। शीघ्र ही ऐसे साधक को वास्तविक 'तत्वज्ञान' अर्थात् 'आत्मज्ञान' की प्राप्ति होती है अथवा अन्त में निश्चित ही उसे 'कैवल्य' की प्राप्ति होती है।

वेदान्त दर्शन में कर्म

वेदान्त दर्शन में कर्म के तीन भेद बताये गये है– संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म एवं क्रियमान कर्म।

1. **'संचितकर्म'** का अर्थ है– पूर्व जन्म के अनेकों–अनेक शरीरों के द्वारा जो हमने कर्म किये, जिनसे हामरे जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार 'चित्त' में 'संचित' हो जाते हैं, इन्हीं संस्कारों के समूहों को 'संचितकर्म' कहते हैं।
2. **'प्रारब्धकर्म'** ऐसे कर्म हैं जो संचित कर्मों में अधिक प्रबल हैं। ये कर्म इतने बलवान होते हैं कि कर्मों का फल भोगन के लिए अगले जन्म में जाते हैं। यह निश्चित है कि हमारे सुख दुःख की उत्पत्ति प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही होती है।
3. **'क्रियमानकर्म'** को आगामी कर्म के नाम से जाना जाता है। आगामी यानि आगे किया जाने वाला कर्म, व्यक्ति ने जिन कर्मों का आरम्भ अभी नहीं किया है, वही आगामी कर्म हैं जो भविष्य में फल प्रदान करते हैं। आगामी कर्म मनुष्य के आधीन हैं, इनको चाहें तो हम बना सकते हैं, चाहे तो बिगाड़ सकते हैं।

वेदों, पुराणों और उपनिषदों में 'निष्काम कर्म' पर बल दिया गया है और यह आदेश दिया गया है कि – ''कर्मयोगी को कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहिए''।

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म

श्रीमद्भगवद्गीता में तीन प्रकार के कर्म बताये गये हैं–

1. **'कर्म'** – अर्थात् शास्त्रानुकूल किये गये कर्म।
2. **'अकर्म'** – अर्थात् कर्म का अभाव यानि 'तुष्णी अभाव'।
3. **'विकर्म'** – अर्थात् जो निशिद्ध या पाप कर्म है, वह 'विकर्म' है।

शास्त्रानुकूल कर्म को ही 'कर्मयोग' कहते हैं। कर्मयोग का प्रतिपादन गीता में विशदरूप से हुआ है। भारतीय दर्शन में कर्म को बन्धन का कारण माना गया है किन्तु कर्मयोग में उस स्परूप का निरूपण किया गया है जो बन्धन का कारण नहीं होता।

योग का अर्थ है– 'समत्व की प्राप्ति–**''समत्वं योग उच्यते''**। सिद्धि और असिद्धि, सफलता और विफलता में समभाव रखना 'समत्व' कहलाता है। 'योग' का एक अर्थ– कर्मों को कुशलता से सम्पादन करना भी है–''योगः कमसु कौशलम्''। अर्थात् इस प्रकार कर्म करना कि वह बन्धन न उत्पन्न कर सके। गीता के अनुसार जो कर्म निष्काम भाव से ईश्वर के लिए किये जाते हैं वे बन्धन नहीं उत्पन्न करते। वे मोक्षरूप परमपद की प्राप्ति में सहायक होते है। इस प्रकार कर्मफल तथा आसक्ति से रहित होकर ईश्वर के लिए कर्म करना वास्तविक रूप से कर्मयोग है और इसका अनुसरण करने से मनुष्य को अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।

गीता के अनुसार कर्मों से संन्यास लेना अथवा उनका परित्याग करने की अपेक्षा कर्मयोग अधिक श्रेयस्कर है। कर्मों का केवल परित्याग कर देने से मनुष्य सिद्धि अथवा परमपद नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। सभी अज्ञानी जीव–प्रकृति से उत्पन्न सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से नियंत्रित होकर, परवश हुआ कर्मों में प्रवृत्त किये जाते हैं। मनुष्य यदि बाह्य दृष्टि से काम न भी करे और विषयों में लिप्त न भी हो और यदि उनका मन से चिन्तन करता है, तो इस प्रकार का मनुष्य मूढ़ और मिथ्या आचरण करने वाला कहा गया है। कर्म करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है उसके बिना शरीर का निर्वाह भी सम्भव नहीं है।

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि तीनों लोकों में उनका कोई भी कर्तव्य नही है, उन्हें कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी रहती फिर भी कर्मों में संलग्न रहते हैं। यदि वे कर्म न करें तो मनुष्य भी उनके बताये हुए मार्ग का अनुसरण करने से निष्क्रिय हो जायेंगे। इससे लोकस्थिति के लिए किये जाने वाले कर्मों का अभाव हो जायेगा। जिसके फलस्वरूप सारी प्रजा नष्ट हो जायेगी। इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य को भी जो प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो चुका है, सदा कर्म करते रहना चाहिए। अज्ञानी मनुष्य जिस प्रकार से फल प्राप्ति की आकांक्षा से कर्म करता है, उसी प्रकार आत्मज्ञानी को लोक संग्रह के लिए आसक्तिरहित होकर कर्म करना चाहिए।

इस प्रकार आत्मज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति ही गीता के अनुसार वास्तविक रूप से कर्मयोगी हो सकता है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि– तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए फलों की चिन्ता किये बिना अनासक्ति भाव से कर्म करता जा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतुर्भुमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। ——(2)

कर्म के महत्व का प्रतिपादन करते हुए भगवान कहते है कि निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। ——(3)

मनुष्य की श्रेष्ठता का उपदेश करते हुए भगवान कहते है कि हे अर्जुन! जो पुरूष मन से इन्द्रियों को वश में करके बिना आसक्ति के समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है –

यस्त्विइन्द्रियाणि मनसा नियम्यारमतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।। ——(4)

कर्म की श्रेष्ठता का उपदेश करते हुए भगवान कहते हैं तू शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा –

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेद कर्मणः।। ——(5)

गुणविभाग तथा कर्मविभाग की महत्ता का उपदेश देते हुए भगवान कहते हैं– हे महाबाहो! गुणविभाग तथा कर्मविभाग के सत्य को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहें हैं, ऐसा समझकर उनमें आसक्त नहीं होता। त्रिगुणात्मक माया के कार्यरूप पाँच महाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिया, पाँच कर्मन्द्रियाँ एवं शब्द आदि पाँच विषय इन सबके समुदाय का नाम– **'गुणविभाग'** है और इनकी परस्पर चेष्टाओं का नाम– **'कर्मविभाग'** है। इन दोनों विभागों अर्थात् 'गुणविभाग' तथा 'कर्मविभाग' से आत्मा को पृथक अर्थात् निर्लेप जानना ही इनका तत्व जानना है–

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।
गुणागुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।। ——(6)

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कर्म

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – तुम निरन्तर कर्म करो, परन्तु कर्म में आसक्ति का परित्याग कर दो। अपने को किसी भी विषय के साथ एकमत कर डालो, अपने मन को सदैव स्वाधीन रखो। संसार में तुहें जो कुछ भी सुख–दुःख दिखाई देते हैं, वे तो विश्व के अवश्यम्भावी व्यापार हैं। दारिद्र्य, सम्पत्ति, सुख ये सब क्षणभंगुर ही हैं। वास्तव में हमारे प्राकृत स्वभाव से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। हमारा प्राकृत स्वरूप तो सुख और दुःख से एकदम परे है, प्रत्यक्ष और कल्पनागोचर विषयों के बिलकुल अतीत है, परन्तु फिर भी हमें निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए। ——(7)

स्वामी भजनानन्द के अनुसार कर्म

स्वामी भजनानन्द के अनुसार – सभी व्यक्तियों में एक अन्तर्निहित रचनात्मक प्रवृत्ति होती है। केवल कर्म के द्वारा ही हमारी सृजन–शक्ति को पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। जब हम अपनी सृजन–शक्ति को पूर्ण अभिव्यक्ति देने वाले सही ढंग के कार्य कर पाते हैं, तो जीवन ऊर्जा हमारे माध्यम से उन्मुक्त रूप से प्रवाहित होती है। तब हमारा जीवन उद्देश्य पूर्ण, सार्थक तथा आनन्दमय प्रतीत होने लगता है। यदि हम गलत प्रकार का कार्य करें, या कोई कार्य ही न करें, तो हमारी सृजन–शक्ति हमारे भीतर ही अवरूद्ध रह जाती है। तब हमारा जीवन खोखला और निरर्थक बन जाता है। ——(8)

मार्क्स का 'कर्म–सिद्धान्त'

मार्क्स के 'कर्म–सिद्धान्त' में यह एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। उनके मतानुसार धन कमाना व्यक्ति को अमानवीयता की ओर ले जाता है। अतः कर्म का मुख्य उद्देश्य धन कमाना नहीं है, अपितु अपनी आत्मा का बोध है। आत्मबोध से तात्पर्य है–मानवीय आकांक्षाओं तथा सृजनात्मक शक्तियों का पूर्ण विकास तथा अभिव्यक्ति। कर्म जब इस उच्चतर आदर्श की पूर्ति नहीं करता, तो यह व्यक्ति को मानवता तथा जीवन से विच्छिन्नता की ओर ले जाता है।

——(9)

निष्कर्ष

कर्म द्वारा परमार्थ की प्राप्ति का यही रहस्य है कि लक्ष्य का संकल्प, फिर उसके अनुकूल उत्कर्ष साधनों का उपयोग। क्योंकि साध्य और साधन की एकरूपता पर ही कर्मयोग सिद्धि का भवन खड़ा होता है। साधनों में भ्रष्टता या निकृष्टता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर है। इनसे किसी का भी

भला नहीं होता, सिद्धि उनसे बहुत दूर हट जाती है। जिस तरह साधनों की पवित्रता आवश्यक है, उसी तरह साध्य की उत्कृष्टता भी आवश्यक है। साध्य निकृष्ट हो और उसमें अच्छे साधनों को भी लगा दिया जाये तो कोई हितकर परिणाम नहीं होगा। उल्टे उनसे व्यक्ति और समाज दोनों की हानि होगी। उत्कृष्ट साधन भी निकृष्ट लक्ष्य की पूर्ति के आधार बनकर समाज में बुराईयाँ पैदा करने लगते हैं लेकिन किन्हीं समर्थ साधनों का उपयोग किया जाये तो वे व्यापक स्तर पर फैलने लगते हैं। अतः जिनके पास साधन है, माध्यम है, उन्हें आवश्यकता है– ''उत्कृष्ट लक्ष्य'' के निर्धारण की। अतः आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, निर्माण और विकास ही **'कर्म'** का सच्चा स्वरूप है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

–: सन्दर्भ सूची :–

1. योगसूत्र – 4/7
2. गीता – 2/47
3. गीता – 3/5
4. गीता – 3/7
5. गीता – 3/8
6. गीता – 3/28
7. कर्मयोग, स्वामी विवेकानन्द – पृष्ठ सं0–94
8. कर्मयोग की साधना, स्वामी भजनानन्द – पृष्ठ सं0–19
9. कर्मयोग की साधना, स्वामी भजनानन्द – पृष्ठ सं0–19